विक्रम संवत-२०३५, श्रावण कृष्ण - २, बुधवार, तारीख २७-८-१९८०
वचनामृत- ३४४, ३४९ प्रवचन-२०

जब तक सामान्य तत्त्व—ध्रुव तत्त्व—ख्याल में न आये, तब तक अन्तर में मार्ग कहाँ से सूझे और कहाँ से प्रगट हो? इसलिए सामान्य तत्त्व को ख्याल में लेकर उसका आश्रय करना चाहिए। साधक को आश्रय तो प्रारम्भ से पूर्णता तक एक ज्ञायक का ही—द्रव्यसामान्य का ही—ध्रुव तत्त्व का ही होता है। ज्ञायक का—'ध्रुव' का जोर एक क्षण भी नहीं हटता। दृष्टि ज्ञायक के सिवा किसी को स्वीकार नहीं करती—ध्रुव के सिवा किसी पर ध्यान नहीं देती; अशुद्ध पर्याय पर नहीं, शुद्ध पर्याय पर नहीं, गुणभेद पर नहीं। यद्यपि साथ वर्तता हुआ ज्ञान सबका विवेक करता है, तथापि दृष्टि का विषय तो सदा एक ध्रुव ज्ञायक ही है, वह कभी छूटता नहीं है।

पूज्य गुरुदेव का ऐसा ही उपदेश है, शास्त्र भी ऐसा ही कहते हैं, वस्तुस्थिति भी ऐसी ही है॥३४४॥

३४४। सूक्ष्म बात है, भैया! यह तो आत्मा की बात है। हो-हा में कुछ मिलनेवाला नहीं है। बाहर में हो-हा। आहाहा! यहाँ तो, **जब तक सामान्य तत्त्व...** जब तक सामान्य तत्त्व **ध्रुव तत्त्व—ख्याल में न आये,...** आहाहा! मुद्दे की रकम है। भगवान आत्मा चैतन्य रत्नाकर दीपक, बड़ा देव, वह जब तक सामान्य तत्त्व अर्थात् ध्रुव तत्त्व ख्याल में न आये, **तब तक अन्तर में मार्ग कहाँ से सूझे...** आहाहा! बाहर की चाहे कितनी प्रवृत्ति में लाखों, करोड़ों पैसा खर्च करे, बाहर में धामधूम (करे), प्रभु! मार्ग तो बिल्कुल निवृत्ति का है। अन्तर में शान्ति का सागर, उस ओर जाकर उसमें बसे बिना, उसे निजघर बनाये बिना दूसरी चीज़ कोई भी करे, उससे जन्म-मरण नहीं मिटेंगे। आहाहा! इसमें विद्वता का काम नहीं है, कोई करोड़ों रुपया खर्च करे तो जन्म-मरण मिटे, ऐसा नहीं है। आहाहा!

जब तक सामान्य तत्त्व... सामान्य तत्त्व अर्थात् आत्मा ध्रुव। आहा..! पुण्य-पाप तो नहीं, परवस्तु तो नहीं, वर्तमान पर्याय भी जिसके लक्ष्य में नहीं लेनी है, उसे—पर्याय को तो ध्रुव को लक्ष्य में लेना है। आहाहा! यह सार है। **सामान्य तत्त्व—ध्रुव तत्त्व—ख्याल में न आये, तब तक अन्तर में मार्ग कहाँ से सूझे...** आहा..! तब तक अन्तर में जाने का रास्ता, जिसने रास्ता ही नहीं देखा, जिसने रास्ता नहीं देखा है, वह अन्दर में कैसे जाए? अन्दर में जाने की जो कला और रीत है, वह नहीं जानी है तो अन्दर में कैसे जा सके? और अन्दर में जा सके बिना जन्म-मरण का अन्त प्रभु, आये, ऐसा नहीं है। दुनिया में चाहे जितनी बाहर से उल्लास बताये या उल्लास करे, परन्तु यह चीज़ समझे बिना सब बिना अंक के शून्य हैं। आहाहा!

कहते हैं, **तब तक अन्तर में मार्ग कहाँ से सूझे और कहाँ से प्रगट हो?** जो लक्ष्य में ही नहीं लिया, तो उस मार्ग की सूझ कहाँ से पड़े? सूझ न पड़े तो प्रगट तो कहाँ से होगा? पर्याय में प्रगट सामान्य का आनन्द का अनुभव आना चाहिए, वह प्रगट में ध्रुव के ख्याल बिना, अन्तर में प्रवेश किये बिना उस आनन्द का ख्याल नहीं आता। और आनन्द का ख्याल न आये तो वह तत्त्व कैसा है, (वह मालूम नहीं पड़ता)। आहाहा! भगवान आनन्द की मूर्ति प्रभु है। आहा..! अतीन्द्रिय आनन्द, सर्वांग में अतीन्द्रिय आनन्द। हड्डी, चमड़ी का लक्ष्य छोड़ दे, प्रभु! यह तो बाहर की धूल की वस्तु है। अन्दर में कर्म है, वह भी परचीज़ है। पुण्य और पाप का भाव हो, वह भी संसार है। आहाहा! संसरण इति संसार। स्वरूप सामान्य में से हटकर पुण्य-पाप में आता है, वह संसार है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, वहाँ से हटकर अन्तर में न आये, तब तक कहाँ से सूझे और कहाँ से प्रगट हो? आहाहा! **इसलिए सामान्य तत्त्व को ख्याल में लेकर...** सार यह है, प्रभु! समवसरण में तो अरबों मनुष्य, करोड़ों मनुष्य (आते हैं)। बाघ, सिंह और नाग (आते हैं), उसमें यह भगवान की दिव्यध्वनि ऐसा कहती है। आहाहा! भगवान की दिव्यध्वनि का यह सार है। आहाहा! जानपना चाहे जितना हो, बाह्य क्रियाकाण्ड चाहे जितनी भी हो, परन्तु ध्रुव ख्याल में आये बिना अन्तर में कैसे जाना, वह खबर न पड़े तो जाना कहाँ से? आहाहा! ऐसा मार्ग है। **उसका आश्रय करना चाहिए।** इसलिए, इस कारण से **सामान्य तत्त्व...** एकरूप रहनेवाले तत्त्व को, पर्याय बिना की चीज़ जो है, उसका ख्याल में लेकर

उसका आश्रय करना चाहिए। ख्याल में लेकर आश्रय करना चाहिए। जो ख्याल में ही न आये, ज्ञान में चीज़ न आये, तो उसका आश्रय कहाँ से होगा? आहाहा! जो भगवान अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ नजर में, ख्याल में, ज्ञान में ज्ञेयरूप से ख्याल में न आये तो वहाँ ठहरने का, प्रवेश करना कैसे बने? किसमें प्रवेश करे? वस्तु को तो जाना नहीं। आहाहा! ऊपर की माथापच्ची करनेवाले व्रत, नियम, तप को करे तो उससे कोई आत्मा प्राप्त नहीं होता। आहाहा! वह तो चिदानन्द सहजानन्दमूर्ति प्रभु (है)।

साधक को आश्रय तो प्रारम्भ से पूर्णता तक एक ज्ञायक का ही— साधकजीव-धर्मी को प्रारम्भ से आश्रय लेकर **प्रारम्भ से पूर्णता तक...** सम्यग्दर्शन प्रारम्भ, सिद्धपद पूर्ण। वहाँ तक आत्मा का आश्रय करना। आहाहा! दिशा पलट देनी, प्रभु! पर ओर की दिशा की ओर दशा है, पर-ओर की दिशा की ओर जो दशा है, वह तो मिथ्यात्व और विकार है। आहाह! अपने प्रभु के सिवा बाहर की चीज़ की दिशा की ओर जाना, वह तो संसार है। आहाहा! कठिन लगे। पंच परमेष्ठी के सामने देखे तो भी राग और संसार है। क्योंकि परद्रव्य है। परद्रव्य में जाना, लक्ष्य करने से तो राग ही आता है। आहाहा!

साधक को... शान्ति का साधक। धर्म का अन्तर साधक। उसे **आश्रय तो प्रारम्भ से पूर्णता तक एक ज्ञायक का ही—** आश्रय है। ज्ञायक-जानन स्वभाव का पिण्ड। उसका ही पहले से पूर्णता तक आश्रय तो उसका है। बीच में चाहे जितनी प्रवृत्ति आये, परन्तु आश्रय तो द्रव्य का है। द्रव्य का आश्रय छूटता नहीं। आहाहा! **एक ज्ञायक का ही—द्रव्यसामान्य का ही...** उसका अर्थ-लाईन का अर्थ। ज्ञायक अर्थात् क्या? ज्ञायक माने क्या? ज्ञायक अर्थात् द्रव्य सामान्य। लाईन की है न? वह ज्ञायक का अर्थ किया। द्रव्य सामान्य जो त्रिकाली भगवान, अनादि-अनन्त सनातन सत्य जो अनादि से गुप्त है, अपनी कला खिली नहीं और अपनी कला खिले बिना संसार की चाहे जो भी कला हो, ७२ कला, उसमें कोई संसार का अन्त नहीं आता। आहाहा! **ध्रुव तत्त्व का ही होता है।** कहा न? **साधक को आश्रय तो प्रारम्भ से पूर्णता तक एक ज्ञायक का ही...** आहाहा! बीच में व्यवहार आये, वह तो जानने लायक है। आहाहा! आश्रय और अवलम्बन तो एक ज्ञायक का अर्थात् द्रव्यसामान्य का—ध्रुव तत्त्व का ही आश्रय होता है। आहाहा! ऐसी बात कैसी धर्म की? चाहे जितने व्रत करे, चाहे जितने दान, दया, तपस्या करे, वह कोई धर्म

नहीं है। वह तो राग और विकल्प है।... भाई! यह सब सुना नहीं है। जहाँ-तहाँ... यह सुनने मिले, ऐसा भी नहीं है। आहाहा!

ऐसा मनुष्य का देह, उसमें प्रभु! तूने अनन्त-अनन्त काल परिभ्रमण करते हुए अनन्त भव हुए। आहाहा! और यहाँ से भी देह छोड़कर कहाँ जाना? अपनी सत्ता तो अनादि-अनन्त है। उस सत्ता का कहाँ रहना? यदि उसका आश्रय किया होगा तो वहाँ रहेगा। आहाहा! आहाहा! ऐसी बात है।

ज्ञायक का—'ध्रुव' का जोर एक क्षण भी नहीं हटता। धर्मी जीव को प्रारम्भ से ध्रुव ओर की खटक, ध्रुव का जोर क्षणभर के लिये भी नहीं हटता। आहाहा! ध्रुव को रखकर सब बात है। भले भजन हो, भक्ति हो, व्रतादि हो। होता है व्यवहार, परन्तु यह चीज़ हो तो वह व्यवहार पुण्यबन्ध का कारण है। अन्तर की चीज़ न हो तो व्यवहार राग करोड़ करे, आत्मा को कुछ लाभ नहीं है। आहाहा! ज्ञायक एक क्षण भी नहीं हटता। **दृष्टि ज्ञायक के सिवा किसी को स्वीकार नहीं करती...** आहाहा! सम्यग्दृष्टि-सत्य दृष्टि ध्रुव के सिवा किसी का स्वीकार नहीं करती। आहाहा! दृष्टि अपना स्वयं का भी स्वीकार नहीं करती। आहाहा! अन्दर ध्रुव चीज़ भगवान विराजता है। आहाहा! एक पामर प्राणी साधारण हो, उसे ऐसा कहना कि तू प्रभु है। उसे ऐसा लगे, यह क्या कहते हैं। भाई! तू प्रभु है, पूर्ण भगवान है। अन्दर पूर्ण शक्ति पड़ी है। तेरा लक्ष्य उस ओर गया नहीं। ध्रुव ओर का तेरा झुकाव अनन्त काल में कभी गया नहीं। आहाहा!

दृष्टि ज्ञायक के सिवा किसी को स्वीकार नहीं करती... ओहोहो! पंच परमेष्ठी को दृष्टि स्वीकार नहीं करती। दृष्टि में तो भगवान पूर्णानन्द का नाथ ध्रुव स्वरूप... आहाहा! उसमें शरीर सुन्दर मिले, उसमें कुछ पैसा मिले; इसलिए घुस जाए। जन्म-मरण का अन्त आये नहीं। कहाँ-कहाँ भटकता है। कहाँ निगोद और नरक, चौरासी लाख योनि। आहाहा! उसे टालने का उपाय तो यह एक ही है। **ध्रुव के सिवा किसी पर ध्यान नहीं देती;...** दृष्टि ध्यान नहीं देती। दृष्टि ध्रुव के सिवा कहीं ध्यान नहीं देती। आहाहा! यह बहिन के वचन है। आज बहिन का जन्मदिवस है। आहा..!

अशुद्ध पर्याय पर नहीं,... वीतराग ओर का स्मरण आदि, उस पर भी दृष्टि नहीं है।

आहा.. ! शुद्ध पर्याय पर नहीं। आहाहा ! शुद्ध पर्याय आनन्द की प्रगट हुई, त्रिकाली ध्रुव के अवलम्बन से; दृष्टि शुद्ध पर्याय पर भी नहीं है। आहाहा ! कठिन बात है। शुद्ध पर्याय पर भी दृष्टि नहीं है। दृष्टि तो एक ही त्रिकाल भगवान अतीन्द्रिय आनन्द एवं सुख का धाम। आहा.. ! ऐसी जो वज्र जैसी शाश्वत चीज़, दृष्टि उसके सिवा कहीं टिकती नहीं। धर्मी की दृष्टि इसके सिवा कहीं टिकती नहीं। **किसी पर ध्यान नहीं देती;...** हो, सुने। परन्तु अन्दर दृष्टि जिस पर है, वह दृष्टि दूसरी जगह ध्यान नहीं देती। आहाहा !

यद्यपि साथ वर्तता हुआ... दृष्टि सम्यग्दर्शन है, उसका ध्येय तो ध्रुव है। उसके सिवा कहीं ध्यान नहीं देते। परन्तु दृष्टि के साथ जो ज्ञान है,... आहा.. ! है ? **ज्ञान सबका विवेक करता है,...** ज्ञान सबको जानता है। विवेक का अर्थ जानता है। जैसा है, वैसा उसे जाने। आहाहा ! १२वीं गाथा में कहा है न ? समयसार। ११ में कहा, **भूदत्थमस्सिदो** भूतार्थ त्रिकाल.. त्रिकाल.. त्रिकाल सनातन सत्य को पकड़ने से प्रभु ! तुझे सम्यग्दर्शन होगा। उस सम्यग्दर्शन में केवलज्ञान लेने की ताकत है। आहाहा ! उसके सिवा अपूर्ण दशा हो, शुद्ध अल्प हो, अभी पूर्ण न हो और शुद्धता अल्प हो, अशुद्धता हो, वहाँ कहा है कि जाना हुआ प्रयोजनवान है। **तदात्वे** ऐसा संस्कृत पाठ है। वह है, व्यवहार का विषय है, परन्तु वह विषय जाननेलायक है; आश्रय करनेलायक नहीं। आहाहा ! ऐसा सब फेरफार। पूरा दिन व्रत करना, तपस्या करनी, उपवास में रुकना, चोविहार (रात्रि भोजन का त्याग), जमीकन्द नहीं खाना, छह परबी दया पालनी, छह परबी ब्रह्मचय्र पालना। प्रभु ! वह सब क्रिया है। आत्मा तो आनन्द का नाथ ज्ञायकस्वरूप है। वह ज्ञायक कोई भी विकल्प में आता नहीं। ज्ञायक विकल्प में कभी आता नहीं। आहा.. ! विकल्प और ज्ञायक, दोनों बिल्कुल भिन्न चीज़ रहती है। आहाहा !

कहते हैं कि दृष्टि के साथ... दृष्टि द्रव्य के सिवा किसी को स्वीकारती नहीं, परन्तु उस दृष्टि के साथ वर्तता ज्ञान सबका विवेक करता है। जाने कि यह मर्यादा इतनी खिली है, अभी इतना बाकी है, मुझे अभी केवलज्ञान बाकी है। यह सब विचार ज्ञानदृष्टि में आते हैं, द्रव्यदृष्टि में नहीं। आहाहा ! कल तो कहा था न ? आहाहा ! भगवान ! पूर्णानन्द जिसकी अपार महिमा, अपार शक्ति, उसके आश्रय से सिद्धपद जो हुआ तो यहाँ परमात्मा में तो अभी उससे अनन्त गुना पड़ा है। परन्तु वह द्रव्य, अब सिद्धपर्याय से विशेष पर्याय करेगा,

ऐसा होता नहीं। क्या कहा ? द्रव्य के आश्रय से समकित से सिद्धपद प्राप्त हुआ, परन्तु उतनी ताकतवाला है तो वह सिद्धपद से आगे कोई शुद्धि बढ़ाये, ऐसा नहीं है। वह तो सिद्धपद की पर्याय वहाँ पर्यायरूप से पूर्ण है, वस्तु स्वरूप से अन्दर पूर्ण है। और पूर्ण होने पर भी अचिंत्य और अपार होने पर भी सिद्धपद की पर्याय के सिवा आगे और भी शुद्धि कर दे, ऐसा है नहीं। आहाहा! पूर्ण पद प्राप्त किये बिना रहे नहीं। स्व का आश्रय लेते हैं तो पूर्ण पद प्राप्त किये बिना रहे नहीं और पूर्ण से आगे जाने का करना नहीं है। कहाँ जाए ? आहाहा! द्रव्य महाप्रभु है। पर्याय तो उसके समक्ष पामर है। द्रव्य के समक्ष पर्याय कोटि, कीमत अलग है। उस पर्याय में बढ़ावा करना, द्रव्य में बहुत महिमा है, बहुत गुण है, बहुत गम्भीर... गम्भीर... गम्भीर चीज़ पड़ी है तो प्रारम्भ से सिद्धपद तक आश्रय लेगा, उसके बाद विशेष पर्याय करनी है, ऐसा है नहीं। आहाहा! वहाँ मर्यादा हो गयी।

मुमुक्षु : सिद्धपद तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में पूरी हुई है। वस्तु में नहीं। आहाहा! वस्तु तो पूर्णानन्द का नाथ। ऐसी तो अनन्त-अनन्त सादि-अनन्त, केवलज्ञान की सादि-अनन्त पर्याय एक ज्ञानगुण में है। आहाहा! ऐसी क्षायिक समकित की सादि-अनन्त पर्याय एक श्रद्धागुण में है। शान्ति / वीतरागता-शान्ति, सादि-अनन्त शान्ति / वीतरागता अन्दर एक चारित्रगुण में है। आहाहा! ऐसी सादि-अनन्त अनन्त... अनन्त... अनन्त पर्याय उसके गुण में है। फिर भी वह गुण विशेष करे नहीं और गुण पूर्ण किये बिना रहे नहीं। आहाहा! अरे..! उसका विश्वास कैसे आये ? क्योंकि बाहर से सब किया है। शरीर, वाणी, मन, यह, वह। अन्दर चैतन्य दल प्रभु सनातन अस्ति, मौजूदगी, हयाती अनादि सनातन सत्य उस पर दृष्टि किये बिना, सम्यग्दर्शन—प्रारम्भ दशा होती नहीं। प्रारम्भ से पूर्णता तक परमात्मा द्रव्य का आश्रय है। आहाहा! खूबी तो देखिये!

पूर्ण पर्याय प्रगट हुई। भूतकाल से भविष्यकाल अनन्तगुना है। भूतकाल में जितनी पर्याय हो गयी, उसकी संख्या से भविष्य की पर्याय अनन्तगुनी हैं। आहाहा! फिर भी वह पर्याय शुद्ध हो गयी, बस, यहाँ पूर्ण हो गयी। अन्दर का तो पार नहीं है। पर्याय में इतनी है, परन्तु अन्दर में पार नहीं है। ओहोहो! महा खजाना चित् चमत्कारी अन्दर वस्तु, वह तो ज्ञान में ज्ञेयरूप से ख्याल में आये, तब उसकी महिमा और महत्ता की कीमत हो। खबर

बिना किसकी कीमत करे ? वस्तु अन्दर कौन है प्रभु ? देहदेवल में भगवान विराजता है। आहाहा ! वही यहाँ कहते हैं।

यद्यपि साथ वर्तता हुआ ज्ञान सबका विवेक करता है,... जहाँ-जहाँ जो-जो हो, वह जानता है। **तथापि दृष्टि का विषय तो सदा एक ध्रुव...** आहाहा ! दृष्टि का विषय अर्थात् ध्येय अर्थात् लक्ष्य; दृष्टि का लक्ष्य तो अकेला ध्रुव है। वह कभी हटता नहीं। और ध्रुव से हटा, वह धर्म में आया नहीं। आहाहा ! ऐसी बात है। लोगों ने बाहर से मान लिया है। अन्दर में क्या चीज़ है, कितनी ताकत है, कितना सामर्थ्य है, उसमें कितनी चमत्कारिक वस्तु पड़ी है, अनन्तानन्त चमत्कारिक शक्ति है। अनन्त चमत्कृतिवाली अनन्ती शक्ति है। आहाहा ! फिर भी सिद्धपद पूर्ण हुआ तो बस, पूरा हो गया। परन्तु यह पूर्ण यहाँ रहा, वह पूर्ण वहाँ रहा। यहाँ कमी होती नहीं। सिद्धपद प्रगट हुआ तो भी द्रव्य में कमी नहीं होती। आहाहा ! इतना सब आया न ? केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तवीर्य, अनन्त आनन्द। आहा.. ! सर्व गुण की अनन्त-अनन्त व्यक्ति प्रगट हुई, फिर भी अन्दर में कुछ कमी नहीं हुई। आहाहा ! वह तो पूर्णानन्द का नाथ वही का वही है। और उसकी पर्याय में हीन अवस्था-एक अक्षर के अनन्तवें भाग में निगोद में है तो भी द्रव्य में पुष्टि है। बाहर ज्यादा निकला नहीं है, इसलिए अन्दर ज्यादा पुष्टि है, ऐसा है नहीं। आहाहा ! कोई अलौकिक वस्तु है। आहाहा ! इस वस्तु की दृष्टि बिना दूसरी चीज़ की कोई कीमत नहीं है। आहाहा ! ग्यारह अंग के ज्ञान की भी कीमत नहीं। आहा.. ! इस चीज़ के समक्ष बारह अंग भी विकल्प है। आहाहा ! बारह अंग का लक्ष्य करे तो भी विकल्प है। प्रभु तो निर्विकल्प दशा अन्दर है। उसके समक्ष बारह अंग तो साधारण है। अरे.. ! लोगों को बैठना कठिन पड़े।

बारह अंग कि जिसमें अरबों-अरबों अक्षर हैं, उसका अन्तर्मुहूर्त में स्वाध्याय कर ले। आहाहा ! कैसे यह सब ? असंख्य समय में अनन्त गुणों की अनन्त पर्यायों की स्वाध्याय कर ले। छहों द्रव्य की स्वाध्याय अन्तर्मुहूर्त में करे। बारह अंग का स्वाध्याय अन्तर्मुहूर्त में करे। क्या है यह ? आहाहा ! यहाँ तो थोड़ा-बहुत आये, पाँच-पच्चीस-पचास श्लोक आये तो (अभिमान चढ़ जाए)। यहाँ तो कहते हैं, आहाहा ! वह पूर्ण हुआ, वहाँ पूर्ण दशा ज्ञायक के आश्रय से हुई। फिर भी पूर्ण दशा हुई तो ज्ञायक में कुछ हीनता आई, कुछ कमी हुई, ऐसा नहीं है। और पर्याय में अल्प ज्ञान अक्षर के अनन्तवें भाग में निगोद

में हो तो उसके द्रव्य में वृद्धि नहीं हुई। आहाहा! ऐसा कैसा स्वरूप! इतना केवलज्ञान आदि अनन्त-अनन्त गुण प्रगट हो, तो भी अन्दर वैसा का वैसा! आहाहा! अचिन्त्य चमत्कारी भगवान है। उसकी बातें, बापू!

पंचाध्यायीकार तो कहते हैं कि बारह अंग भगवान के श्रीमुख से आये हैं, वह स्थूल बात आयी है। लालचन्दभाई! आहाहा! उसकी गम्भीरता जो अन्दर जानने में आये, वह बात बाहर नहीं आती। आहा..! बारह अंग। चौदह पूर्व तो उसका एक भाग है। बारह अंग तो उससे विशेष है। आहाहा! अन्तर्मुहूर्त में असंख्य समय में बारह अंग का स्वाध्याय कर ले। गजब बात! यह क्या है? प्रभु! आहा..! इतनी ताकत तो श्रुतज्ञान की भूमिका में है। श्रुतज्ञान की भूमिका में इतनी ताकत है। आहाहा! अन्तर्मुहूर्त असंख्य समय में कितने शब्द! एक आचारंग के १८००० पद, एक पद में ५१ करोड़ श्लोक, उससे डबल सूयगडांग, उससे डबल ठाणांग। बारह अंग की बात ही क्या करनी! ओहो..! प्रभु! अन्दर बहिन में आया है, इसमें एक जगह आया है। बारह अंग अन्तर्मुहूर्त में पारायण कर ले, तो भी उसकी कोई विशेष कीमत नहीं है। आहाहा! अन्तर्मुहूर्त में बारह अंग! प्रभु! किसको कहें! पारायण कर ले तो भी उसकी कीमत नहीं है।

भगवान ध्रुव, वहाँ से दृष्टि हटती नहीं। आहाहा! यह चीज़ करने की है। पढ़कर, समझकर, समझकर या निवृत्ति लेकर यह करना है। आहाहा! **ज्ञान सबका विवेक करता है, तथापि दृष्टि का विषय तो सदा एक ध्रुव ज्ञायक ही है, वह कभी छूटता नहीं है।** आहा..! बाद में बहिन ने यहाँ का नाम दिया है। यह उपदेश यहाँ का है, ऐसा कहा। अब, ३४९। इसमें किसी ने लिखा है। साढ़े तीन सौ में एक कम।

चक्रवर्ती, बलदेव और तीर्थंकर जैसे 'यह राज्य, यह वैभव—कुछ नहीं चाहिए' इस प्रकार सर्व की उपेक्षा करके एक आत्मा की साधना करने की धुन में अकेले जंगल की ओर चल पड़े! जिन्हें बाह्य में किसी प्रकार की कमी नहीं थी, जो चाहें वह जिन्हें मिलता था, जन्म से ही, जन्म होने से पूर्व भी, इन्द्र जिनकी सेवा में तत्पर रहते थे, लोग जिन्हें भगवान कहकर आदर देते थे—ऐसे उत्कृष्ट पुण्य के धनी सब बाह्य ऋद्धि को छोड़कर, उपसर्ग-

परिषहों की परवाह किये बिना, आत्मा का ध्यान करने के लिए वन में चले गये, तो उन्हें आत्मा सबसे महिमावन्त, सबसे विशेष आश्चर्यकारी लगा होगा और बाह्य का सब तुच्छ भासित हुआ होगा, तभी तो चले गये होंगे न? इसलिए, है जीव! तू ऐसे आश्चर्यकारी आत्मा की महिमा लाकर, अपने स्वयं से उसकी पहिचान करके, उसकी प्राप्ति का पुरुषार्थ कर। तू स्थिरता-अपेक्षा से बाहर का सब न छोड़ सके तो श्रद्धा-अपेक्षा से तो छोड़! छोड़ने से तेरा कुछ नहीं जाएगा, उल्टा परम पदार्थ-आत्मा-प्राप्त होगा॥३४९॥

चक्रवर्ती, बलदेव और तीर्थंकर... अरे..! उनका वैभव क्या था, वह उसके ख्याल में आना मुश्किल है। आहाहा! रावण जैसे नरक में जानेवाला, जिनके स्फटिक के मकान। आहाहा! यहाँ से मरकर नरक में गये। उसकी कोई कीमत नहीं। आहाहा! यहाँ कहते हैं, **चक्रवर्ती, बलदेव और तीर्थंकर जैसे 'यह राज्य, यह वैभव-कुछ नहीं चाहिए'...** हमें यह राज्य और वैभव नहीं चाहिए, प्रभु! आहाहा! चक्रवर्ती का राज नहीं, इन्द्र का इन्द्रासन नहीं। आहाहा! बलदेव तीन खण्ड के धनी। हमें कुछ नहीं चाहिए, हमें तो एक आत्मा चाहिए। बस। आहाहा!

लागी लगन हमारी जिनराज सुजस सुण्यो मैं,
लागी लगन हमारी जिनराज सुजस सुण्यों मैं,
काहू के कहैं अब कबहू न छूटे, लोकलाज सब डारी॥

दुनिया कैसे मानेगी, क्या कहेगी। निश्चयभासी है, ऐसा कहेगी। आहाहा! 'लागी लगन हमारी जिनराज...' जिनराज अर्थात् आत्मा। हों! सुजस सुना। इस भगवान की बात सुनी। भगवान का सुजस सुना कि यह तो चैतन्यमूर्ति महा भगवान। आहाहा!

लागी लगन हमारी जिनराज सुजस सुण्यों मैं,
काहू के कहैं अब कबहू न छूटे, लोकलाज सब डारी॥

दुनिया को दूसरी कीमत है। ऐसे-ऐसे व्रत और तप करे, उसका कुछ नहीं और यह एक आत्मा का ध्यान करे उसमें केवलज्ञान हो जाए। आपकी बातें बहुत (ऊँची)! ऐसे मश्करी करे। करे, बापू! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, राज्य आदि वैभव कुछ नहीं चाहिए। आहाहा! इन्द्र का इन्द्रासन इन्द्र को नहीं चाहिए, प्रभु! अभी समकिती इन्द्र है। उनकी एक रानी है। करोड़ों रानी में एक रानी है, वह भी एकावतारी-एक भवतारी मोक्ष जानेवाली है। वहाँ से निकलकर मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाली है। आहाहा! वह भी हमें कुछ नहीं चाहिए। एक मेरा नाथ, जिस ध्रुव में मेरी दृष्टि पड़ी, वह दृष्टि हटती नहीं और सिद्धपद लेकर ही छुटकारा है। सिद्धपद लेकर ही छुटकारा है। उसके सिवा कहीं अटकना नहीं है। और पीछे... वह तो पहला काल अच्छा था। अच्छे काल में गिरना तो नहीं है, परन्तु इस पंचम काल में ऐसा आता है, ३८वीं गाथा। आहाहा! जो हमें यह प्रगट हुआ है, वह अब गिरनेवाला नहीं है। परन्तु प्रभु आपको वीतराग तो मिले नहीं हैं। पंचम काल में वीतराग का तो विरह है। परन्तु प्रभु! वीतराग के सिवा महा महिमावन्त प्रभु मैं तो यहाँ हूँ न!! आहाहा! पंचम काल में भी मैं तो आत्मा अनन्त-अनन्त वैभव, अनन्त-अनन्त ऋद्धि और अनन्त चैतन्य चमत्कारी वस्तु अन्दर पड़ी है। आहाहा! उसके आगे दुनिया की कोई कीमत नहीं है। आहाहा!

इस प्रकार सर्व की उपेक्षा करके... चक्रवर्ती, बलदेव और तीर्थंकर। पौने नौ बजने आये न? पौन घण्टा करना है? **एक आत्मा की साधना करने की धुन में अकेले जंगल की ओर चल पड़े।** आहाहा! ९६ करोड़ स्त्री का साहिबा अकेला जंगल में चला गया। इस ऋद्धि में बाह्य में प्रगट करने को। भगवान परमात्मा स्वयं है, उसे प्रगट करने को चल पड़े। पौन घण्टा हो गया। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)